

## प्राकृत ग्रन्थों में आचार्य का स्वरूप निरूपण प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन, उदयपुर

प्राकृत साहित्य में अनेक ग्रन्थ समाहित हैं। यहाँ कतिपय प्रमुख ग्रन्थों में प्राप्त आचार्य परमेष्ठी के प्रमुख गुणों को उपस्थित करने का प्रयास है। अरिहंत परमेष्ठी के नाम-स्मरण, जप-ध्यान से हमारे मनश्चक्षुओं के समक्ष एक महान् दिव्यात्मा का स्वरूप उभरता है, जिसके रोम-रोम से शान्तिप्रद लहरें निकल रही हैं। हम शत्रुविहीन हो गये हैं। हमारा कोई शत्रु ही नहीं रहा। हम सभी के हितकारी हैं और सभी हमारे हित की इच्छा करने वाले हैं। सिद्ध परमेष्ठी पर चिन्तन करते ही हमारी आत्मिक और मानसिक भावनाओं में एक ऐसी शान्त धारा प्रवाहित होने लगती है, जैसे हम सच्चिदानन्द धन आत्मा की स्वयं अनुभूति कर रहे हैं। आचार्य परमेष्ठी तो सदाचार के प्रतीक हैं। वे आज के युग में भी आँखों के समक्ष भी हैं। उनका नाम-स्मरण एवं ध्यान से अन्तर्चक्षुओं के समक्ष उनकी छवि उभर आती है। उपाध्याय ज्ञान के प्रकाश स्तम्भ ही हैं जैसे ज्ञान का प्रकाश हमारे चारों ओर फैला हुआ है, हम भी प्रकाशमय हो गये हैं। साधु जी तो आत्मिक साधना के प्रगट रूप ही हैं। रत्नत्रय उनमें साक्षात् है। इनके ध्यान से ऐसा लगता है जैसे मोक्ष-महल के कपाट ही खुल गये हैं। संयम की धारा हमें स्पर्श करके अनुप्राणित कर रही है। हमारे अन्दर ऊर्जा का संचार हो रहा है। हम त्याग-मार्ग की ओर बढ़ रहे हैं। धर्म के संस्कार दृढीभूत हो रहे हैं। इन पाँचों परमेष्ठियों के गुणों को समन्वित करते हुए णमोकार महामंत्र के तीसरे पद में **णमो आयरियाणं**-आचार्यों को नमस्कार हो कहा गया है।

आचार्य का पद जैन चतुर्विध संघ (श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविका) में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ये सम्पूर्ण संघ के नियन्ता और नियामक होते हैं। आचार्य का पद बहुत ही उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। सम्पूर्ण संघ को सम्भालना, सभी साधुओं पर दृष्टि रखना, रखलनाओं और दोषों के लिए प्रायश्चित्त देना उन्हीं का काम है। सबसे बड़ी बात यह है कि अपनी कार्यकुशलता, व्यवहार कुशलता आदि द्वारा वे ही सम्पूर्ण संघ को एकता के सूत्र में निबद्ध रखते हैं। बिखरने नहीं देते। सभी को संतुष्ट रखते हैं।<sup>1</sup>

### आचार्य का स्वरूप :

प्राकृत के प्राचीन ग्रन्थों में आचार्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि आचार्य पंचाचारों से परिपूर्ण, पंचेन्द्रियरूपी हाथी के मद का दलन करने वाले, धीर और गुणगंभीर- होते हैं।

पंचाचार-समग्गा पंचिंदिय-दंति-दप्पणिदलणा ।

धीरा गुण- गंभीरा आयरिया एरिसा होति ।।<sup>2</sup>

पाँच महाव्रतों से उन्नत, तत्कालीन स्व-समय पर -समय स्वरूप श्रुतधारा में निमग्न रहने वाले, नाना गुणों के समूह से परिपूरित आचार्यगण आनन्द प्रदान करें।।

पंच महव्वय-तुंगा तक्कालिय सपर -समय-सुदधारा ।

णाणा गुण-गणभरिया अइरिया मम पसीदन्तु ।।<sup>3</sup>

आचार्य शिवार्य ने भगवती आराधना में आचार्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि साधुओं को दीक्षा, शिक्षा दायक, उनके दोष निवारक तथा अन्य गुण विशिष्ट संघनायक साधु आचार्य कहे जाते हैं। वीतरागता होने के कारण पांच परमेष्ठी में उनका स्थान है।

जो मुनि पांच प्रकार के आचार का निरतिचार स्वयं पालन करता है, पांच आचारों में दूसरों को प्रवृत्त करता है तथा आचार का शिष्यों को भी उपदेश देता है उसे आचार्य कहते हैं। जो सर्वकाल संबंधी आचार को जानकर, आचरण योग्य को आचरण करता हो तथा अन्य साधुओं को आचरण कराता है वह आचार्य है। जिस कारण पांच प्रकार के आचरणों को पालता हुआ शोभता है और आप कर किये गये आचरण दूसरों को दिखाता है, उपदेश करता है वह आचार्य कहलाता है। पंचाचारों से परिपूर्ण पंचेन्द्रिय रूपी हाथी के मद का दलन करने वाले धीर और गुण गंभीर ऐसे आचार्य होते हैं। प्रवचनरूपी समुद्र के जल के मध्य में स्नान करने से अर्थात् परमात्मा के परिपूर्ण अभ्यास और अनुभव से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गई है। जो निर्दोष रीति से छह आवश्यकों का पालन करते हैं। जो मेरु के समान निष्कंप शूरवीर है, जो सिंह के समान निर्भीक है। जो श्रेष्ठ हैं, देश कुल जाति से शुद्ध हैं सौम्य मूर्ति हैं। अन्तरंग बहिरंग परिग्रह से रहित आकाश के समान निर्लेप हैं वे आचार्य परमेष्ठी होते हैं।<sup>4</sup>

भगवती आराधना के टीकाकार ने विजयोदया टीका में गाथा 46 की टीका में लिखा है कि आचार्य मोती का हार, मेघ चन्द्रमा सूर्य और कल्पवृक्ष आदि की तरह प्रत्युपकार की अपेक्षा करके, विनम्र, निर्भय, मानरहित, राग रहित, शल्यरहित, मोहरहित होते हैं। बचन में और तप तथा तेज में अद्वितीय होते हैं ऐसे आचार्य होते हैं। सम्यक् के सारभूत तीन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र में अपने को और गण को स्थापित करने में समर्थ होता है वह गणधर है।

**गाणाम्नि दंसणम्नि य चरणम्भिय तीसु समयसारेसु ।**

**चाएदि जो ठवेदुं गणमप्पाणं गणधरो सो ॥ 289 ॥ –भगवती आराधना**

आचार्य आचारवान, आधारवान, व्यवहारवान, कर्ता, तथा रत्नत्रय के लाभ अलाभ तथा विनाश को दिखानेवाला और अवपीड़क गुण युक्त होता है। आचार्य अपरिश्रावी, निर्वापक, प्रसिद्ध, कीर्तिमान, निर्यापन गुण से युक्त होते हैं। जो पांच प्रकार के आचार का अतिचार लगाये बिना पालन करता है तथा दूसरों को पांच प्रकार के आचार से निरतिचार पालन में लगाता है, आचार का उपदेश देता है वह आचार्य का आचारवान गुण है। जो सदा दस प्रकार के स्थिति कल्प में सम्यक् रूप से धित है वह आचारवान आचार्य पांच समिति तीन गुप्ति के पालन में तत्पर रहता है वह आचार्य है। जो दस प्रकार के कल्पों में सदा समाधान युक्त रहता है, पाप से डरता है विशुद्ध आचरण का पालन करता है। जो पांच प्रकार के आचार में तत्पर रहता है जिसकी समस्त चेष्टाएँ सम्यक् रूप से होती है वह आचार्य क्षपक को आचार का उद्योग करता है ऐसा आचारवान आचार्य ही निर्यापक होता है।

जो चौदहपूर्व या नौ पूर्व का धारी हो महाबुद्धिशाली हो, सागर की लहर की तरह गंभीर, कल्प व्यवहार अर्थात् प्रायश्चित्त शास्त्र का ज्ञाता है वह ज्ञानी आधारवान है। जो दर्शन चारित्र तप का आधारवान होने से आधारवान। ज्ञान आधार है जो ज्ञानवान है वह आधारवान है। जो पांच प्रकार के

व्यवहार अर्थात् आगम, श्रुत, आज्ञा, धारण और जीव को अथर्त् प्रायश्चित को तत्त्व रूप से विस्तार के साथ जानता है जो आचार्य को प्रायश्चित देने का प्रत्यक्षदर्शी है स्वयं प्रायश्चित दे चुका है ऐसा प्रायश्चित शास्त्र का ज्ञाता, प्रायश्चित कर्म का दर्शी, प्रायश्चित देने का अभ्यासी इन तीन गुण सहित है वह व्यवहारवान आचार्य है।<sup>5</sup>

भगवती आराधना में कहा गया है कि जो स्वयं ग्रन्थ और अर्थरूप से आचारांग को जानता है, स्वयं पाँच प्रकार के आचार का पालन करता है और दूसरों से कराता है तथा आचार का अपने शिष्यों को उपदेश भी देता है ऐसे आचारवान् गुण से युक्त आचार्य होता है। यथा—

**आयारं पंचविहं चरदि चरावेदि जो निरदिचारं ।**

**उवदिसदि य आयारं एसो आयरियो णाम ॥ — गा. 421**

जो दर्शन—ज्ञान—चारित्र—तप—वीर्य इन पाँच आचार्यों का स्वयं पालन करते हैं, दूसरे साधुओं से कराते हैं तथा 14 विद्या स्थानों में जो पारंगत हैं, ग्यारह अंगों के धारी हैं, वे आचार्य हैं। अथवा आचारांग मात्र के ज्ञाता हैं और तत्कालीन स्वसमय—परसमय में पारंगत हैं वे आचार्य कहलाते हैं। ये आचार्य मेरु के समान निश्चल, पृथ्वी के समान सहनशील, समुद्र के समान मल दोषों को दूर करने वाले अचेलक एवं सात भयों से मुक्त होते हैं। द्रव्यसंग्रह गा. 52 में कहा गया है—पाँच आचार्यों में जो मुनि स्वयं उद्यत होते हैं तथा दूसरे साधुओं को भी उद्यत करते—कराते हैं, वे साधु आचार्य कहलाते हैं।<sup>6</sup>

**दंसणणाणपहाणे वीरियचारितवरतवायारे ।**

**अप्यं परं च जुंजई सो अइरियो मुणी झेओ ॥**

मूलाचार गा. 510 में कहा गया है—जो सर्वकाल सम्बन्धी आचार को जाने, आचरण योग्य कां आचरण स्वयं करें और अन्य साधुओं को भी करावें वे आचार्य कहलाते हैं। पाँच प्रकार के आचरणों को पालते हुए स्वयं शोभते हैं तथा अपने आचरण दूसरों को भी दिखाते हैं, उपदेश करते हैं। इसलिये वे आचार्य कहे जाते हैं। आचार्य शिष्यों का अनुग्रह, धर्मोपदेश, संघ प्रवर्तन, मर्यादोपदेश एवं गण परिरक्षण का कार्य करते हैं। ये सूत्रार्थ के विद्वान होते हुए उसका विशद विवेचन करने की क्षमता रखते हैं। स्वसमय परसमय के ज्ञाता होने के कारण आचार्य की गणना श्रुत—विशेषज्ञों में की जाती है। परम्परा से प्राप्त सूत्रों के अर्थ की यथार्थ जानकारी आचार्य को होती है। यथा—

**सिस्साणुगगह—कुसली—धम्मवदेसी य संघबट्टवओ ।**

**मज्जादुवदेसी वि य गणपरिक्खो मुणेयव्वो ॥**

**संगह—णुगगह—कुसली—सुत्तत्थ विसारओ पहियकित्ती ।**

**किरिआचरणेसुजुत्ती गाहुय आदेज्जवयणो य ॥**

**गंभीरी दुद्धरिसी सूरुो धम्मप्पहावणासीलो ।**

**खिदि—ससि—सायर—सरिसो कमेण तं सो दु संपत्ती ॥<sup>7</sup>**

प्रवचनरूपी समुद्र के जल के मध्य में स्नान करने से परमागम के परिपूर्ण अभ्यास और अनुभव से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गई है, जो निर्दोष रीति से छह आवश्यकों का पालन करते हैं, जो मेरु के समान निष्कंप हैं, शूरवीर हैं, सिंह के समान निर्भीक हैं, श्रेष्ठ हैं, देश—कुल और जाति से शुद्ध हैं,

सौम्यमूर्ति हैं, अन्तरंग-बहिरंग परिग्रहरहित हैं, आकाश के समान निर्लेप हैं—ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते हैं। जो संघ के संग्रह (दीक्षा) और निग्रह (शिक्षा एवं प्रायश्चित) देने में कुशल हैं, जो सूत्र (परमागम) के अर्थ में विशारद हैं, जिनकी कीर्ति सब जगह फैल रही है, जो सारण (आचरण)वारण (निषेध) और साधन (व्रतों की रक्षा) करने वाली क्रियाओं में निरन्तर उद्यत रहते हैं उन्हें आचार्य परमेष्ठी कहते हैं।<sup>8</sup> यथा—

पवयण—जलहिं जलोयर—ण्हायामल—बुठि—सुद्ध छावासो ।

भेरुव्व णिप्पकंपो सूरु पंचाणणो वज्जो ॥ 29 ॥

देश—कुल—जाइ—सुद्धो सीमंगी संग मंग उम्मुक्की ।

गयणव्व णिरुव्वेवो आइरियो एरिसी हीई ॥ 30 ॥

संग्रह—णिग्गह—कुसली सुत्तत्थ—विसारिओ पहिय—कित्ती ।

सारण—वारण—साहण किरियुज्जुत्ती दु आइरियो ॥ 31 ॥

—धवला टीका प्रथम पुस्तक पृष्ठ 49

### आचार्य के कर्तव्य :-

सल्लेखना के प्रति उत्साह वंत क्षपक या साधक को स्वीकार कर लेने के बाद आचार्य का यह दायित्व हो जाता है कि वह क्षपक को जैसे भी हो सल्लेखना में स्थिर रखें। उसके भव एवं भाव सुधारने का प्रयत्न करें। श्री शिवाचार्य ने भगवती आराधना ग्रन्थ में आचार्य—निर्यापकाचार्य के कर्तव्य का विस्तृत विवेचन किया है। उनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं:-

1. जैसे तपाये हुए लोहे के द्वारा पिया गया जल बाहर नहीं होता वैसे ही शिष्य के दोषों को जानकर भी अन्य मुनियों के सामने प्रकट नहीं होने देता। इस प्रकार शिष्य के द्वारा प्रवार किये गये दोषों के रहस्य को गुप्त रखना यह आचार्य का अपरिश्रावी गुण है। तथा कर्तव्य भी है।
2. यदि किसी कमी के कारण या निर्यापकों के प्रमाद से क्षपक मर्यादा छोड़ने की इच्छा करता है तो आचार्य का यह कर्तव्य है वह विचलित न होकर क्षमाशील तथा मार्दव गुण के द्वारा संतोष पूर्ण बचनों से कषाय रहित होकर क्षपक को शान्त करे।
3. क्षपक को शान्त करने के लिये आचार्य में या निर्यापक में निम्नलिखित योग्यताएँ भी होनी चाहिये। (1) श्रुत का अभ्यास करने वाला (2) श्रुत को हृदय में धारण करने वाला, (3) रत्नत्रय के लोकव्यवहार का ज्ञाता, (4) चारों अनुयोगों के प्रयोग में कुशल एवं धारक, (5) बक्ता, (6) विनयी, (7) वैयावृत्य का करने वाला (8) रत्नत्रय के अतिचारों का ज्ञाता, (9) स्वाभाविक बुद्धि सम्पन्न, (10) जितेन्द्रिय महात्मा, (11) जो समस्त श्रुत का ज्ञाता होता है या समस्त श्रुत का ज्ञाता न भी हो पर अन्य गुण हों तो निर्यापक हो सकता है।
4. आचार्य या निर्यापक का कर्तव्य कि वह क्षपक को प्रिय स्निग्ध, मधुर, अर्थ से गंभीर वचनों एवं मन को प्रसन्न करने वाली, कर्ण सुखद कथाओं से जागृत करें।<sup>9</sup>

## कुवलयमालाकहा में वर्णित आचार्य स्वरूप

प्राकृत कथा ग्रन्थ कुवलयमालाकहा में उद्द्योतनसूरि ने एक कथा के प्रसंग में आचार्य के प्रमुख गुणों की जानकारी दी है। महारथ साधु प्रतिक्रमण करते समय पंच परमेष्ठियों को नमन करते हैं। तब वे आचार्य के इन गुणों का वखान करते हैं।

### जैन शासन के प्रभावक

—हम जैसे सामान्य साधु जिन जिनेन्द्रदेव के वचनों से पर श्रद्धा रखते हैं उन जिनेन्द्रवचनों को जिन्होंने सूत्रबन्ध करके सुरक्षित रखा है उन गणधरों को मैं प्रणाम करता हूँ। चौदह पूर्व, उससे कम पूर्व ग्रन्थों का ज्ञान रखने वाले आचार्यों को, वाचनाचार्य तथा ग्यारह अंगों को धारण करने वाले आचार्यों को मेरा नमस्कार है। आचार को धारण करने वाले, सकल प्रवचन को जिन्होंने धारण किया है उन ज्ञान के धारी आचार्यों को मेरा नमस्कार है। ज्ञानाचार को धारण करने वाले, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार को विशुद्ध भाव से पालन करने वाले सुधीर आचार्यों को मेरा नमस्कार है। जिनेन्द्र के वचनों को प्रकाशित करने वाले, अपनी शक्ति के अनुसार जैन शासन की प्रभावना करने वाले आचार्यों को मैं नमस्कार करता हूँ।<sup>10</sup> यथा—

पणमामि गणहराणं जिण—वयणं जेहिं सुत्त—बंधेण ।  
बधेउण तह कयं पत्तं अम्हारिसा जाव ॥

चोद्द—पुव्वीण णमो आयरियाणं तहूण—पुव्वीण ।  
वायग—वसहाण णमो णमो य एगारसंगीण ॥

आयार—धराण णमो धारिज्जइ जेहिं पवयणं सयलं ।  
णाण—धराणं ताणं आयरियाणं पणिवयामि ॥

जिण—वयणं दिप्पंतं दीवंति पुणो पुणो ससत्तीए ।  
पवयण—पभासयाणं आयरियाणं पणिवयामि ॥

### आचार्यरूपी प्रदीप

प्रवचन के सार के गूढ अर्थ को समझाने वाले आचार्य भगवन्तों के बिना अंग, उपांग वाले ग्रन्थों के समुद्र में हम जैसे थोड़ी बुद्धिवाले लोग फिर कैसे प्रवेश करने में समर्थ होते? इन ग्रन्थों का गूढ अर्थ आचार्यों की परम्परा से प्रकाश में आया है, यदि ये आचार्य न होते तो इन आगमों का सार लोक में किस प्रकार जाना जाता? आगमों के सूत्र मात्र अर्थों की सूचना देने वाले होते हैं, किन्तु उनका व्याख्यान तो आचार्य लोग ही प्रकाशित करते हैं। बुद्धिरूपी तैल से युक्त आगम रूपी ज्योति से सुशोभित यदि आचार्यरूपी सूर्यप्रदीप न होते तो यह लोक कैसे अच्छी तरह जिनवचनों को देखता? यथा—

गूढं पवयण—सारं अंगोवंगे समुद्द—सरिसम्मि ।  
अम्हारिसेहिं कत्तो तं णज्जइ थोय—बुद्धीहिं ॥

तं पुण आयरिएहिं पारंपरण दीवियं एत्थ ।  
जइ होंति ण आयरिया को तं जाणेज्ज सारमिणं ॥

सूयण—मेत्तं सुत्तं सूइज्जइ केवलं तहिं अत्थो ।  
जं पुण से वक्खाणं तं आयरिया पयासेति ॥

बुद्धि—सिणेह—जुत्ता आगम—जलणेण सुट्टु दिप्पंता ।  
कह पेच्छउ एस जणो सूरि—पईवा जहिं गत्थि ॥

### सूर्यरूपी आचार्य

चारित्ररूपी किरण वाले अज्ञानरूपी अंधकार को नाश करने वाले निर्मल चन्द्र के समान आचार्य इस संसार के भव्य जनों के कुमुदों को प्रतिबोधित कर देते हैं। दर्शनरूपी निर्मल प्रकाश वाले, दशों दिशाओं में अपने ज्ञान की किरणों को बिखरने वाले सूर्यरूपी आचार्य यदि नहीं होते तो जगत् में मिथ्यात्व रूपी अंधकार फैला होता। इस तरह प्रकाश प्रदान करने वाले सूर्य की तरह, इच्छानुसार फल प्रदान करने वाले, कल्पवृक्ष की भांति तथा चिन्तामणिरत्न के सदृश सौभाग्यशाली, जंगमतीर्थ रूप आचार्यों को मैं प्रणाम करता हूँ।<sup>11</sup> यथा—

चारित्त—सील—किरणो अणाण—तमोह—णासणो विमलो ।  
चंद—समो आयरिओ भविए कुमुए व्व बोहेइ ॥

दंसण—विमल—पयावो दस—दिस—पयसरंत—णाण—किरणिल्लो ।  
जत्थ ण रवि व्व सूरी मिच्छत्त—तमंधओ देसो ॥

उज्जोयओ व्व सूरुओ फलओ कप्पदुमुओ व्व आयरिओ ।  
चिन्तामणि व्व सुहओ जंगम—तित्थं च पणओ हं ॥

### आचार्यों को किये गये नमस्कार का फल

क्षेत्र, काल, भाव में जो कहीं पर भी आचार्य हैं, उन वर्तमान, अतीत और भविष्य के सभी आचार्यों को मैं प्रणाम करता हूँ। जो व्यक्ति मरण—काल की बेला में आचार्य को नमस्कार करता है तो भावपूर्वक ऐसा नमस्कार करने वाला बोधि को प्राप्त करता है। त्रिविध योग से युक्त व्यक्तियों के द्वारा यदि आचार्य को नमस्कार किया जाता है तो बहुत से जन्मों बुढ़ापा और मरण के दुख का अन्त किया जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं है। आचार्यों को किया गया नमस्कार शल्यों का अन्त करने वाला होता है, वह मनुष्य एवं देवगति को तथा अक्षत फल प्रदान करने वाला भी होता है। इसलिए मैं सब प्रकार से आदरपूर्वक आचार्यों को नमस्कार करता हूँ, जिससे मैं कर्म—कलंक से मुक्त होकर शीघ्र मोक्ष को प्राप्त करूँगा। यथा—

जे जत्थ केइ खेत्ते काले भावे व सव्वहा अत्थि ।  
तीताणागय—भूया ते आयरिए पणिवयामि ॥

आयरिय—णमोक्कारो जइ लब्भइ मरण—काल—वेलाए ।  
भावेण कीरमाणो सो होहिइ बोहि—लाभाए ॥

आयरिय—णमोक्कारो जइ कीरइ तिविह—जोग—जुत्तेहिं ।  
ता जम्म—जरा—मरणे छिंदइ बहुए ण संदेहो ॥

आयरिय—णमोक्कारो कीरंतो सल्लगत्तणं होइ ।  
होइ परामर—सुहओ अक्खय—फल—दाण—दुल्ललिओ ॥

तम्हा करेमि सव्वायरेण सूरीण होइ णमोक्कारं ।  
कम्म—कलंक—विमुक्को अइरा मोक्खं पि पावेस्सं ॥<sup>12</sup>

## आचार्य के छत्तीस गुणः

आवश्यकसूत्र में में आचार्य के ये छत्तीस गुण बताये गये हैं—

“पंचेन्द्रिय संवरणो तह नवविह बंभचेर गुत्तिधरो ।  
चउविह कसायमुक्को, इअ अद्वारस गुणेहिं संतुत्तो ।।  
पंच महव्यजुत्तो, पंचविहायार—पालण—समत्थो ।  
पंचसमिओ तिगुत्तो, इइ छत्तीस गुणेहिं गुरु मज्झ ।। ”

पाँच इन्द्रियों (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत) को संवरित करने वाले। नव गुप्तियों सहित ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले—अर्थात् शुद्ध और निर्दोष ब्रह्मचर्य के धारी। चार प्रकार के कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) से मुक्त अथवा कषायों को विजित करने वाले, क्रोध आदि को उपशान्त करने वाले। आचार्य इन अठारह गुणों से युक्त होते हैं। पाँच महाव्रतों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) का पूर्ण रूप से पालन करने वाले। पांच प्रकार के आचारों (ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार) के पालन में पूर्ण समर्थ। पाँच समितियों से युक्त। तीन गुप्तियों (मनगुप्ति, वचनगुप्ति, और कार्यगुप्ति) को धारण करने वाले। गुरु इन छत्तीस गुणों के धारक होते हैं। जिन महासाधकों में ये छत्तीस गुण होते हैं, वे ही आचार्य पद के धारक होते हैं।<sup>13</sup> भगवती आराधना में कहा गया है कि ये छत्तीस मूल गुण आचार्य के होते हैं।

आयरवमादीया अट्टगुणा दस विधो य ठिदिकप्पो ।

बारस तव छावासय छत्तीस गुणा मुणेयब्बा ।। – गा. 528

—आचारत्व आदि आठ गुण, दस प्रकार का स्थिति कल्प, बारह तप, और छह आवश्यक ।

डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री में आचार्य के छत्तीस गुण इस प्रकार वर्णित किये हैं—12 तप, 10 धर्म (उत्तम क्षमा आदि), 5 आचार, 6 आवश्यक ओर 3 गुप्ति। इसके अतिरिक्त उन्होंने आचार्य की अन्य विशेषताएँ भी बताई हैं, यथा—14 विद्या स्थानों के पारंगत, स्व—समय पर—समय में पारंगत, सहनशील, निश्चल, दोषरहित होते हैं। वर्तमान समय में तीर्थकर और केवलज्ञानी उपलब्ध नहीं हैं। उनके स्थान की पूर्ति आचार्यदेव ही कर रहे हैं। इन्ही के सशक्त हाथों में धर्म की ध्वजा है। वे धर्मधारक हैं। अपने सशक्त कंधों पर धर्म एवं चमुर्विध संघ का भार वहन करके आचार्य धर्म—ज्योति को सतत प्रकाशमान रख रहे हैं। अतः वे सभी के वन्दनीय—पूजनीय हैं।<sup>14</sup>

29, विद्या विहार कालोनी,  
उत्तरी सुन्दरवास  
उदयपुर—313001

## सन्दर्भ

1. (क) आचार्य महाप्रज्ञ : एसो पंच णमोक्कारो, लाडनूं  
(ख) आचार्य कल्याणसागर : णमोकार महामंत्र-साधना और सिद्धि
2. नियमसार गा. 73
3. तिलोयपण्णत्ति 1/3
4. भगवती आराधना, गा. 417, 418
5. भगवती आराधना-परिशीलन
6. द्रव्यसंग्रह गाथा 52
7. मूलाचार समा. अ., गा 35, 37, 38
8. धवला टीका 1/1.1.1/ पृ. 49
9. भगवती आराधना-परिशीलन, सम्पा. प्रो. प्रेम सुमन जैन, व्याबर, 2007
10. कुवलयमालाकहा (भाग 1-2) सम्पा. प्रो. प्रेम सुमन जैन, जयपुर 2016 अनुच्छेद 422
11. कुवलयमालाकहा (भाग 1-2) सम्पा. प्रो. प्रेम सुमन जैन, जयपुर 2016 अनुच्छेद 422
12. कुवलयमालाकहा (भाग 1-2) सम्पा. प्रो. प्रेम सुमन जैन, जयपुर 2016 अनुच्छेद 422
13. जैन सिद्धान्त कोष भाग 1 पृ. 252
- 14.(क). नेमिचन्द्र शास्त्री : मंगलमंत्र णमोकार- एक अनुचिन्तन  
(ख). देवेन्द्र मुनि : जैन आचार : सिद्धान्त और स्वरूप, उदयपुर, पृ. 492-493